उपनिषदों में ईश्वर का स्वरूप

आचार्या डॉ. सूर्यादेवी चतुर्वेदा

पाणिनि महर्षि की **ज्ञा अवबोधने** क्र्यादि **ज्ञा नियोगे** चुरादि एवं **मारणतोणनिशामनेषु ज्ञा** भ्वादि गणों वाली धातुओं से निष्पन्न ज्ञेय, ज्ञाता, ज्ञापक शब्द यह ज्ञापित करते हैं कि इस जगत् में जो कुछ है वह सब ज्ञेय है, ज्ञातव्य है। जिस ज्ञेय को गौतम मुनि ने प्रमेय[१] शब्द से व्यक्त किया है। जगत् में प्रमेय के ज्ञाता हैं और ज्ञाता को ज्ञान कराने वाले ज्ञापक भी हैं।

ज्ञेय ईश्वर विषय-

जगत् के ज्ञेय पदार्थों में ईश्वर का विषय भी महत्त्वपूर्ण ज्ञेय है। इस में ज्ञेय ईश्वर, ज्ञाता मनुष्य संज्ञाधारी हैं। ईश्वर विषय के प्रज्ञापक वेद, वेदानुकूल ब्राह्मणग्रन्थ, वेदांग, उपांग कहे जाने वाले दर्शन ग्रन्थ, आरण्यक, उपनिषद् आदि शास्त्र व ग्रन्थ और ऋषि, महर्षि, मुनि, आचार्य, विद्वान् आदि जन हैं। ज्ञेय, ज्ञाता, ज्ञापक इस कड़ी के ज्ञेय ईश्वर विषय को शास्त्रों[२] और ऋषि, महर्षि, मुनियों[३] ने अति स्पष्ट शब्दों में प्रतिपादित किया है, पर आचार्य, विद्वान् और विचारकों ने ज्ञेय ईश्वर विषय की विभिन्न परिभाषाएँ कथोपकथन प्रस्तुत कर ऐसी अदालत में खड़ा कर दिया है, जिससे जनसाधारण को निर्णय करने में भी असाध्य-सा बना दिया है।

शास्त्र दिग्गज शंकराचार्य मतावलम्बी नवीन वेदान्तियों का मानना है बस वह ही वह है अर्थात् केवल ईश्वर मात्र है, जो ब्रह्म कहा जाता है। इसके अतिरिक्त कोई अन्य पदार्थ नहीं है।[४]

बौद्धों का पूजनीय देव बुद्ध है, ईश्वर नहीं।[५]

विद्वानों में अपनी संख्या दर्ज कराने वाले जैन मतावलम्बियों का कथन है जो राजा है, वही ईश्वर है।[६]

स्वयं को विचारक प्रतिपादित करने वाले ईसाई मतावलम्बियों का विचार है जो गॉड है, वही ईश्वर है और चौथे आसमान पर रहता है।[७]

मुस्लिम विचारकों का कथन है, जो अल्लाह है, वह ईश्वर है। जिसका तख्त सदा सातवें आसमान पर रहता है।[८]

विचारक चार्वाकों का मानना है, ईश्वर नाम की कोई सत्ता ही नहीं है।[९]

ईश्वर विषयक और भी अनेक चिन्तन हैं। आश्चर्यपूर्ण बात है, इतने चिन्तन हैं, पुनरपि ईश्वर की कोई परिभाषा व लक्षण ऐसा नहीं किया गया, जिससे सृष्टि के आदि से परिज्ञात, वेदादि शास्त्र निर्दिष्ट ईश्वर विषय सुज्ञात हो जाता?

ईश्वर परिभाषक प्रथम महापुरुष महर्षि दयानन्द-

ऋषियों के ऋषि, विचारकों के विचारक महर्षि दयानन्द ही प्रथम महापुरुष हैं, जिन्होंने वेदादि शास्त्रोक्त ईश्वर विषयक परिभाषायें व लक्षण प्रदान किये। महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश, आर्यसमाज के नियम, आर्योद्देश्यरत्नमाला आदि ग्रन्थों, पुस्तकों में जो ईश्वर की परिभाषायें व लक्षण निर्दिष्ट किये हैं, वे सभी सत्य व अकाट्य हैं। उदाहरणतः -

प्रथम- ईश्वर जिसके ब्रह्म परमात्मादि नाम हैं, जो सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त हैं, जिसके गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्त्ता धर्त्ता, हर्त्ता, सब जीवों को कर्मानुसार सत्य न्याय से फलदाता आदि लक्षणयुक्त है, उसी को परमेश्वर मानता हूँ।

स्वमन्तव्या. १।।

ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है,

उसी की उपासना करने योग्य है।

आर्यसमाज का द्वितीय नियम।।

जिसके गुण, कर्म, स्वभाव और स्वरूप सत्य ही हैं, जो केवल चेतनमात्र वस्तु है तथा जो अद्वितीय, सर्वशक्तिमान्, निराकार, सर्वत्र व्यापक, अनादि, अनन्त आदि सत्यगुण वाला है और जिसके अविनाशी, ज्ञानी, आनन्दी, शुद्ध, न्यायकारी, दयालु, अजन्मादि स्वभाव हैं, जिसके कर्म जगत् की उत्पत्ति, पालन और विनाश करना तथा सब जीवों को पाप-पुण्य के फल ठीक-ठीक पहुँचाना है, उसको ईश्वर कहते हैं।

ज्ञान के ४ साधन-

किसी भी वस्तु या पदार्थ के ज्ञान करने में उस वस्तु या पदार्थ के जो गुण, कर्म, स्वभाव एवं स्वरूप हैं, वे ही निमित्त बनते हैं, साधनभूत होते हैं।

ईश्वर के परिचय में भी उसके गुण, कर्म, स्वभाव एवं स्वरूप ही निमित्त हैं। ईश्वर सर्वोपरि है, जगत् का स्रष्टा है, जगदाधार है। ओ३म्, ब्रह्मादि जिसके नाम हैं। अनेक नामी ईश्वर का मुख्य एवं निज नाम ओ३म् है। ओम् पदवाच्य ईश्वर महतो महान् है, बड़ा है, अनन्त भी है। उस अनन्त ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव और स्वरूप भी अनन्त हैं।

महर्षि दयानन्द द्वारा परिभाषित लक्षण में ईश्वर स्वरूप विभाग-

महर्षि दयानन्द ने उपर्युक्त ईश्वर के परिभाषित लक्षण में जो विशेषण प्रस्तुत किये हैं, उन विशेषणों को गुण, कर्म, स्वभाव एवं स्वरूप इन विभागों में विभक्त करें तो वह विभाग इस प्रकार होगा-

ईश्वर के सर्वशक्तिमान्, निराकार, निर्विकार, सर्वव्यापक, अनादि, सर्वान्तर्यामी, अनन्त आदि विशेषण **गुण** विभाग में आते हैं।

ईश्वर के सृष्टिकर्त्ता, जगत् की उत्पत्ति, पालन, विनाश करना, सर्वाधार सर्वेश्वर एवं सब जीवों को पाप, पुण्य के फल ठीक-ठीक पहुंचाना आदि विशेषण **कर्म** विभाग के हैं।

ईश्वर के अविनाशी, ज्ञानी, आनन्दी, शुद्ध, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा अनुपम, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र आदि विशेषण **स्वभाव** विभाग में होते हैं।

ईश्वर का सच्चिदानन्द विशेषण **स्वरूप** विभाग में आता है।

महर्षि दयानन्द ने ईश्वर की परिभाषाओं में एवं ईश्वर के प्रतिपादन व व्याख्यान में जो-जो विशेषण लगाये हैं, वे सभी ईश्वर के यथार्थ स्वरूप को व्यक्त करने वाले हैं। वेद दर्शन आदि से प्रमाणित हैं, उपनिषदों में व्याख्यात हैं।

महर्षि दयानन्द ने ईश्वर के किन्हीं विशेषणों में स्वरूप शब्द लगाया है, किन्हीं विशेषणों में स्वभाव शब्द लगाया है।

महर्षि ने विशेषणों के साथ स्वभाव शब्द वहाँ जोड़ा है, जहाँ ईश्वर के नैसर्गिक कर्म, प्रकृतितः करणीय कर्म, गुण आदि के अपरिवर्त्तनीय स्थिति को व्यक्त करना होता है।

स्वरूप शब्द वहाँ लगाया है, जहाँ ईश्वर को जाना, माना व देखा जा सकता है। ईश्वर के निराकार होने से उसे जानना, मानना देखना कठिन है। ईश्वर को जनाने के लिये सच्चिदानन्दस्वरूप[१०], सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप[११] शुद्धस्वरूप[१२], चेतनस्वरूप[१३] आदि स्वरूप शब्द वाले ऐसे विशेषण हैं, जो ईश्वर को जानने मानने में अत्यन्त सहायक हैं।

स्वरूप शब्द वैसे तो सामान्यतया पदार्थ के गुण, कर्म, स्वभाव एवं स्वशब्दार्थ से अभिव्यक्त अर्थ में प्रयुक्त होता है, जिससे ईश्वर के निराकार, सर्वशक्तिमान् न्यायकारी आदि सभी विशेषण स्वरूप शब्द में ही सन्निविष्ट हो जाते हैं, तथापि ऋषि ने जिन विशेषणों के साथ स्वरूप शब्द लगाया है, वे ऋषि के गम्भीर चिन्तन का परिचायक हैं।

उपनिषदों में ईश्वर स्वरूप-सत् स्वरूप-

ईश्वर का सत् स्वरूप महर्षि दयानन्द ने गायत्री मन्त्र[१४], आर्यसमाज नियम[१५], ईश्वर परिभाषा[१६] आदि में निर्दिष्ट किया है।

सत् क्विबन्त शब्द है। सत् शब्द की निष्पत्ति, व्युत्पत्ति व अर्थ करते हुए महर्षि दयानन्द लिखते हैं-

अस भुवि[१७] इस धातु से सत् शब्द सिद्ध होता है, **यदस्ति त्रिषु कालेषु न बाध्यते तत् सद् ब्रह्म,** जो सदा वर्तमान अर्थात् जो भूत, भविष्य और वर्तमान कालों में जिसका बाध न हो, उस परमेश्वर को सत् कहते हैं।

सत्या. प्र. पृ. २१।।

महर्षि के वचन से सुस्पष्ट है कि सत् वाच्य वह है जो तीनों कालों में रहता है। जिसकी सत्ता सदा रहती है।

ईश्वर का यह सत् स्वरूप वेदों से प्रतिपादित है[१८] और उपनिषदों में भी वर्णित है।

ईश्वर के इस सत् स्वरूप को छान्दोग्यादि उपनिषदों में निर्दिष्ट करते हुये कहा है-

सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्।

छान्दो. उप. ६/२/१,२।।

अर्थात् हे सोम्य! सुशील श्वेतकेतु का पुत्र, **अग्रे**=सृष्टि रचना से पूर्व, **एकम्**=अकेला, अद्वितीय ही, **आसीत्**=सत्ता वाला था।

अस्ति ब्रह्मेति चेद् वेद। सन्तमेनं ततो विदुरिति।

तैत्ति. उ. ब्र. ६/उ।।

अर्थात् ब्रह्म है, उसकी सत्ता है। इस प्रकार यदि जानता मानता है, उस मनुष्य को तब ही **सन्तम्**=सत्ता वाला माना जाता है।

तात्पर्य हुआ ब्रह्म असत् नहीं है, **सत्**=सत्ता वाला है। ब्रह्म की सत्ता को समझने वाला ही सत्ता वाला बनता है। उसकी सत्ता से ही मानने, समझने वाले की सत्ता है, सम्पूर्ण जगत् की सत्ता है।

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।

तैत्ति उ. ब्र. २/क।।

अर्थात् वह ब्रह्म **सत्यम्**=सत्यस्वरूप, सत्ता वाला ज्ञानमय चित् स्वरूप व **अनन्तम्**=अनन्त, सर्वव्यापक अन्त से रहित है।

उपनिषदों में ईश्वर का चित् स्वरूप-

ईश्वर का चित् स्वरूप महर्षि दयानन्द ने गायत्री मन्त्र[१९], आर्यसमाज नियम[२०], ईश्वर परिभाषा[२१] आदि में किया है।

चित् शब्द **चिती संज्ञाने** भ्वादि. धातु से **क्विप्**[२२] प्रत्यय द्वारा निष्पन्न हुआ है। जिसकी व्युत्पत्ति होगी-

यः चेतति चेतयति वा इति चित्।

महर्षि दयानन्द ने चित् शब्द की निष्पत्ति, व्युत्पत्ति और अर्थ करते हुये लिखा है-

चिती संज्ञाने इस धातु से चित् शब्द सिद्ध होता है। यश्चेतति चेतयति संज्ञापयति सर्वान् सज्जनान् योगिनस्तश्चित्परं ब्रह्म, जो चेतनस्वरूप सब जीवों को चिताने और सत्याऽसत्य का जाननेहारा है, इसलिए परमात्मा का नाम **चित्** है।

सत्या. प्र. १, पृ. २२।।

महर्षि के कथन का भाव यह है कि ब्रह्म के चेतनस्वरूप का प्रतिपादक चित् शब्द है। चित् स्वरूप ब्रह्म ही जगत् के जीवों को चेतना देता है, सत्यासत्य आदि का ज्ञान कराता है। महर्षि दयानन्दोक्त चित् शब्द का यह प्रतिपादन वेद प्रमाणित है।[२३]

उपनिषदों में भी ईश्वर के चित् स्वरूप प्रतिपादक अनेक वचन हैं। कठोपनिषद् का वचन है-

नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्।।

कठो. ५/१३।।

अर्थात् **यः**=जो ईश्वर अनित्य पदार्थों में नित्य, चेतन जीवात्माओं को चेतनतादायक व जो अनेकों में एक है, सबकी कामनाओं, भोग सामग्री को पूर्ण करने वाला है, वह जीवात्माओं के अन्दर रहता है। उस अन्दर रहने

वाले को जो धीर पुरुष देख लेते हैं, उनको ही चिरस्थायी शान्ति प्राप्त होती है, दूसरे अज्ञानियों को प्राप्त नहीं होती।

ईश्वर के चित् स्वरूप को प्रश्नोपनिषद् में ईक्ष दर्शने भ्वादि धातु से निष्पन्न ईक्षाञ्चक्रे, ऐक्षत आदि क्रियावाची शब्दों से स्पष्ट किया है। कहीं सर्वज्ञ, विज्ञाता आदि पदों से चित् स्वरूप निर्दिष्ट किया है। यथा-

स ईक्षाञ्चक्रे कस्मिन्नहमुत्क्रान्ते उत्क्रान्तो भविष्यामि, कस्मिन्वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामीति।

प्रश्नो. ६/३।।

स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिराप: पृथिवीन्द्रियं
मनोऽन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्रा: कर्म लोका लोकेषु च नाम च।।

प्रश्नो. ६/४।।

अर्थात् जीवात्मा के साथ रहने वाले सहबन्धु ईश्वर ने **ईक्षाञ्चक्रे**=देखा, चिन्तन किया, किसके निकल जाने से मैं शरीर में से निकल जाऊँगा? किसके प्रतिष्ठित होने से प्रतिष्ठित होऊँगा? इस चिन्तन से उसने विचारा।

जो १६ कलाओं से परिपूर्ण है, उसके निकलने पर मैं निकल जाऊँगा। उसने प्राण=सूक्ष्म शरीर को बनाया। प्राण से श्रद्धा, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, ये पञ्चभूत ज्ञान और कर्म, इंद्रियाँ, मन, अन्न, अन्न से वीर्य, तप= शरीर साधना, मन्त्र=मननशक्ति, कर्म= प्रयत्न, लोक=रूप एवं नाम=संज्ञा बनाये।

ये प्राण आदि १६ कलायें कही जाती हैं। इनके रहने से जीवात्मा शरीर में रहता है, इनके निकलने पर जीवात्मा निकल जाता है। जीवात्मा के निकलते ही तत्रस्थ ईश्वर के द्वारा **चित्**=चेतनता कर्म का भान न होने से ईश्वर का निकलना समझा जाता है।

छान्दोग्य उपनिषद् में चित्स्वरूप स्पष्ट करते हुए कहा-

तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तत्तेजोऽसृजत।

अर्थात् **तद्**=उस पूर्वोक्त चित् रूप चेतन शक्ति ने चाहा कि मैं बहुत हो जाऊँ, प्रजा वाला बनूँ। उसने तेज को रचा।

ऐतरेय उपनिषद का वचन है-

आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किञ्चन मिषत् स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति।।

ऐत. उप. १/१।।

अर्थात् निश्चय से जगन्नियता परमात्मा ही **एक:**=अकेला ही सृष्टि रचना से पूर्व था, अन्य दूसरा कुछ भी आँख की गति करता हुआ जीवधारी नहीं था, उस परमात्मा ने ईक्षत=देखा, मन में विचारा, **लोकान्**=प्राणियों के शरीर एवं पृथिवी आदि लोकों को, **नु**=अवश्य ही बनाऊँ, ऐसा विचार किया।

सर्वज्ञ पद से चित् स्वरूप को व्यक्त करते हुये मुण्डकोपनिषद् में कहा है-

य: सर्वज्ञ: सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तप:।
तस्मादेतद् ब्रह्म नाम रूपन्नं च जायते।।

मुण्ड. उप. २/९।।

अर्थात् जो सर्वज्ञाता, सब में व्याप्त सर्वव्यापक है, जिसका ज्ञानस्वरूप तप है, कर्म है। उस तप से यह ब्रह्म वेदज्ञान, नामरूप वाला जगत् और अन्न उत्पन्न होता है।

ईश्वर के चित् स्वरूप को विज्ञाता पद से स्पष्ट करते हुये बहदारण्यकोपनिषद् में कहा-

नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा...नान्योऽतोऽस्ति विज्ञाता।।

बृहदा. उप. ३/७/२७

अर्थात् अन्तर्यामी से बढ़कर कोई दूसरा द्रष्टा नहीं है...इससे बढ़कर कोई अन्य विज्ञाता नहीं है।

विद ज्ञाने धातु से ईश्वर के चित् स्वरूप को व्यक्त करते हुये श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा गया है-

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षु: स शृणोत्यकर्ण:।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्।।

श्वेता. उप. ४/१९।।

अर्थात् हस्त, पाद से रहित भी शीघ्र गति करने वाला, बिना हाथों के पकड़ लेता है, बिना नेत्रों के देखता है, वह बिना कान के सुनता है, वह जानने योग्य को जानता है, विचारता है और उसको जानने वाला कोई नहीं है, उस पुरुष को सृष्टि से पूर्व विद्यमान महान् कहते हैं।

ईक्षण, सर्व ज्ञान, विज्ञान, जानना आदि चेतन द्वारा ही सम्भव है, अत: ये ईक्षण आदि का कथन करने वाले वचन परमात्मा के चित्स्वरूप के प्रतिपादक हैं।

उपनिषदों में ईश्वर का आनन्द स्वरूप–

ईश्वर का आनन्द स्वरूप महर्षि दयानन्द ने गायत्री मन्त्र[२४], आर्यसमाज[२५] नियम, ईश्वर परिभाषा[२६] आदि में प्रतिपादित किया है।

आनन्द शब्द घञ् प्रत्ययान्त है। आनन्द शब्द की निष्पत्ति, व्युत्पत्ति निर्दिष्ट करते हुये महर्षि दयानन्द लिखते हैं–

टुनदि आङ् समृद्धौ[२७] पूर्वक इस धातु से आनन्द शब्द बनता है। **'आनन्दन्ति सर्वे' मुक्ता यस्मिन, यद्वा यः सर्वान् जीवानानन्दयति स आनन्दः'** जो आनन्दस्वरूप, जिसमें सब मुक्त जीव आनन्द को प्राप्त होते, और जो सब धर्मात्मा जीवों को आनन्दयुक्त करता है, इससे ईश्वर का नाम '**आनन्द**' है।

सत्या. प्र. पृ. २१।।

महर्षि के वचन से व्यक्त है कि आनन्द संज्ञा ईश्वर की है, क्योंकि मुक्त जीवों एवं धर्मात्मा जीवों को ईश्वर आनन्द देता है।

ईश्वर का यह आनन्दस्वरूप वेदों में अमृत शब्द से व्याख्यात है।[२८] उपनिषदों में ईश्वर का आनन्दस्वरूप प्रायेण आनन्द शब्द से ही प्रतिपादित है। यथा–

मुण्डकोपनिषद् का ईश्वर के आनन्दस्वरूप का प्रतिपादक वचन है–

तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं यद्विभाति।

मुण्ड. उप. २/७

अर्थात् ब्रह्मपुर हृदयाकाश में प्रतिष्ठित उस ईश्वर के जानने से ही **धीराः**=ज्ञानी आनन्दस्वरूप वाला अमर जो प्रकाशित हो रहा है, उसे देखते हैं।

ईश्वर के आनन्दस्वरूप के प्रतिपादक तैत्तिरीयोपनिषद् के कथन हैं–

रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति। को ह्येवान्यात्कः प्राण्यात्। यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्। एष ह्येवानन्दयति।

तैत्ति. उप. ब्र. २/७

अर्थात् वह निश्चय से **रसः**=आनन्दस्वरूप है। **रसम्**=आनन्दस्वरूप ब्रह्म को ही प्राप्त कर यह जीवात्मा आनन्द वाला हो जाता है। कौन ही जी सकता है? कौन श्वास, प्रश्वास ले सकता है? यदि वह हृदयाकाश में आनन्दस्वरूप ब्रह्म न होवे। यह आनन्दस्वरूप ब्रह्म ही जीवात्मा को आनन्दमय करता है।

एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रामति।

अर्थात् इस आनंदमय आत्मा को जीवात्मा प्राप्त होता है।

तैत्ति. उप. ब्र. २/८

आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चनेति।

तैत्ति. उप. ब्र. २/९ झ।।

अर्थात् वह ब्रह्म के आनन्द को जानने वाला, अनुभव करने वाला किसी से भी नहीं डरता है।

अन्योऽन्तर आत्मा आनन्दमय:।

तैत्ति. उप. ब्र. २८५ ङ।।

अर्थात् जीव से भिन्न दूसरी अन्तर्वर्ती आत्मा आनन्दस्वरूप वाला है।

तस्य प्रियमेव शिरः। मोदो दक्षिणः पक्षः। प्रमोद उत्तरः पक्षः। आनन्द आत्मा।

तैत्ति. उप. ब्र. २/५ङ।।

अर्थात् उस ब्रह्म का प्रेम सिर है। मोद=प्रसन्नता दक्षिणी भाग है। प्रमोद=हर्ष दायाँ भाग है। आनन्दस्वरूप उसकी

आत्मा=ढाँचा है।

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति।

तैत्ति. उप. भृ. ३/६।।

अर्थात् भृगु ने आनन्द ही ब्रह्म है ऐसा जाना, क्योंकि आनन्द से ही निश्चय से ये भूत उत्पन्न होते हैं। आनन्द साधन के द्वारा ही भूत जीवित रहते हैं, प्रलय में आनन्द में ही लौट जाते हैं।

तैत्तिरीयोपनिषद् का उपरोक्त यह वचन ईश्वर के आनन्दस्वरूप की महिमा का यह ख्यापक है।

बृहदारण्यकोपनिषद् में ईश्वर के आनन्दस्वरूप प्रतिपादक कई वचन हैं। यथा-

विज्ञानमानन्दं ब्रह्म।

बृहदा. उप. ३/९/२८।।

अर्थात ब्रह्म= सबसे बड़ा ईश्वर ज्ञानस्वरूप है एवं आनन्दस्वरूप है।

एषोऽस्य परम आनन्द एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति।

बृहदा. उप. ४/३/३२।।

अर्थात् यह ही इस जीवात्मा का सर्वोत्तम आनन्द है। इसी आनन्द की दूसरे बद्ध प्राणी अंश मात्र को प्राप्त करते हैं, उपभोग करते हैं।

छान्दोग्योपनिषद में ईश्वर के आनन्दस्वरूप को सुख शब्द के द्वारा व्यक्त किया है। यथा-

यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति।
भूमैव सुखं भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्य इति।

छान्दो. ७/२३/१।।

अर्थात् जो निश्चय से **भूमा**=असीम महान् ब्रह्म है। वह ही सुख है, अल्प में सुख नहीं है। भूमा ही सुखस्वरूप है, आनन्दस्वरूप है।

ईश्वर के सत्, चित् आनन्दस्वरूप को उपनिषदों के ये सभी वचन सुस्पष्ट रूप से व्यक्त कर रहे हैं।

महर्षि दयानन्द ने आनंद, सत्, चित् शब्दों का व्याख्यान करके १ पंक्ति लिखी है। यथा-

इन तीनों शब्दों के विशेषण होने से परमेश्वर को सच्चिदानन्दस्वरूप कहते हैं।

सत्या. प्र. पृ. २२।।

उपनिषदों में ईश्वर का अनन्त स्वरूप-

महर्षि दयानन्द ने ईश्वर की परिभाषा व लक्षण में सच्चिदानन्दस्वरूप विशेषण लिखा है, वैसे ही 'सच्चिदानन्दस्वरूप'[२९] यह विशेषण भी निर्दिष्ट किया है, जिसमें अनन्त शब्द है।

ईश्वर का अनन्त स्वरूप वेद प्रतिपादित है।[३०] उपनिषदों में भी ईश्वर का अनन्त स्वरूप वर्णित है। यथा-

ईश्वर के अनन्त स्वरूप को व्यक्त करते हुये कठोपनिषद् में कहा है-

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं
नित्यमगन्धवच्चय यत्।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निश्चाय्यं
तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते।।

कठो. ३/१५।।

अर्थात् शब्द से अगृहीत, स्पर्श रहित, रूप रहित, अविनाशी और स्वाद रहित, नित्य, गन्ध रहित और जो ब्रह्म अनादि, अनन्त, महत् कार्य प्रकृति से अतिसूक्ष्म है, ध्रुव, एकरस है, उस ब्रह्म के उस स्वरूप को जानकर, जीवात्मा जन्म, मरण के मुख से छूट जाता है।

ईश्वर के अनन्तस्वरूप का प्रतिपादक श्वेताश्वरोपनिषद् का वचन है-

अनाद्यनन्तं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य
स्त्रष्टारमनेकरूपम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः।।

श्वेता. उप. ५/१३।।

अर्थात् वह अद्वितीय ईश्वर परिवर्तनशील जगत् के मध्य अनादि है, अनन्त है।

जगत् के रचने वाले को अनेक रूप वाले सम्पूर्ण जगत् के अद्वितीय परिवेष्टा=आच्छादन कर्त्ता को, परमदेव ईश्वर को जानकर सब पाशों से छूट जाता है।

तैत्तिरीयोपनिषद् में ईश्वर के अनन्तस्वरूप को व्यक्त करते हुए कहा गया है-

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।

तैत्ति. उ. ब्र. २/१ क।।

अर्थात ब्रह्म सत्य स्वरूप है, ज्ञानस्वरूप है, अनन्त स्वरूप है।

इस प्रकार उपनिषदों के शब्दों से स्पष्ट है कि ईश्वर सत्, चित्, आनन्द स्वरूप वाला है।

ईश्वर के जैसे सत्, चित्, आनन्द, अनन्त स्वरूप हैं, वैसे ही शुद्धस्वरूप, प्रकाशस्वरूप, मोक्षस्वरूप, तेजस्वरूप आदि अनेक स्वरूपों का महर्षि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में निर्देश किया है। वे सभी स्वरूप वेद प्रमाणित तो हैं ही, उपनिषदों में भी सुस्पष्ट प्रतिपादित हैं, व्याख्यात हैं, वर्णित हैं।

सम्पर्क- प्राचार्या आर्य कन्या गुरुकुल शिवगंज,
जि. सिरोही ३०७०२७ राज.
दूरभाष- ९६८०६७४७८९

टिप्पणी :

१. (१) प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छलजाति-
निग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्नि:श्रेयसाधिगम:।।

न्याय द. १/१/१।।

(२) आत्मादे: खलु प्रमेयस्य तत्त्वज्ञानान्निश्रेयसाधिगम:।।

वात्स्या. भा. न्याय द. १/१/१

२. (१) स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्।

कविर्मनीषी परिभू: स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्य: समाभ्य:।।

यजु. ४०/८।।

(२) न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यश:।

हिरण्यगर्भ इत्येष मा मा हिंसीदित्येषा यस्मान्न जात इत्येष:।।

यजु. ३२/३।।

३. (१) सांख्य- ईदृशेश्वरसिद्धि: सिद्धा।

सांख्य द. ३/५७।।

(२) योग- क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्ट: पुरुषविशेष: ईश्वर:।

योग द. १/२४

(३) न्याय- ईश्वर: कारणं पुरुषकर्माफल्यदर्शनात्।

न्याय द. ४/१/१९।।

(४) वैशेषिक- आर्षं सिद्धदर्शनं च धर्मेभ्य:।

(५) (क) अशास्त्रात् तूपसम्प्राप्ति: शास्त्रं स्यान्न प्रकल्पकम्।

तस्मादर्थेन गम्येताप्राप्ते वा शास्त्रमर्थवत्।।

मीमा. द. ६/२/१८।।

(ख) देवताश्रये च।

शा. भा. मीमा. द. ६/२/१८।।

(६) अथातो ब्रह्मजिज्ञासाा, जन्माद्यस्य यत:, शास्त्रयोनित्वात्, तत्तु समन्वयात्।

वेदा. द. १/१/१-४।।

४. श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभि:।
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ जीवो ब्रह्मैव नापर:।।

५. बौद्धानां सुगतो देवो विश्वं च क्षणभङ्गुरम्।
आर्यसत्त्वाख्यया तत्त्वचतुष्टयमिदं क्रमात्।।

सर्व द. स. बौद्ध. पृ. ८७

६. सर्वज्ञो जितरागदिदोषस्त्रैलोक्यपूजित:।
यथास्थितार्थवादी च देवोऽर्हन् परमेश्वर:।।

सर्व द. स. आर्हत. पृ. १०३।।

७. सत्या. नव. पृ. २३२।।

८. सत्या. नव. पृ. २३२।।

९. तच्चैतन्यविशिष्टदेह एव आत्मा देहातिरिक्त आत्मनि प्रमाणाभावात्।

सर्व द. स. चार. द. पृ. ४।।

१०. आर्यसमाज नियम २, आदि।

११. सत्या. तृ. पृ. ३८, आदि।

१२. सत्या. तृ. पृ. ३८, आदि।

१३. सत्या. तृ. पृ. ३८, आदि।

१४. पञ्चमहायज्ञविधि पृ. २४, सत्या. तृ., पृ. ३७, ३८ आर्याविभिनय, पृ. ७ आदि।

१५. आर्यसमाज नियम २।।

१६. स्वमन्तव्या १, आर्योद्देश्य. १ आदि।

१७. अदादिगण।

१८. (१) इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथे दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।।

ऋ. १/१६४/४६।।

(२) वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सद्यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्।

तस्मिन्निदं सं च वि चैति सर्वं स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु।।

(३) आविः सन्निहितं गुहा जरन्नाम महत्पदम्।

तत्रेदं सर्वमार्पितमेजत्प्राणत्प्रतिष्ठिम्।।

अथर्व १०/८/६।।

१९. पञ्चमहायज्ञविधि, पृ. २४, सत्या. तृ. पृ. ३७, ३८, आर्याभिविनय, पृ. ७ आदि।

२०. आर्यसमाज नियम २।।

२१. स्वमन्तव्या. १, आर्योद्देश्य. १ आदि।

२२. क्विप् च, अष्टा. ३/१/१६।।

२३. (१) ईजानश्चितमारुक्षादग्निं नाकस्य पृष्ठाद्दिवमुत्पत्तिष्यन्।

तस्मै प्र भाति नभसो ज्योतिषीमान्त्स्वर्गः पन्था सुकृते देवयानः।।

अथर्व. १८/४/१४।।

(२) कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः। दृळ्हा चिदारुजे वसु।

ऋ. ४/३१/२।।

यजु. ३६/५।।

२४. पञ्चमहायज्ञविधि, पृ. २४, सत्या. तृ. पृ. ३७, ३८, आर्याविभिनय, पृ. ७ आदि।

२५. आर्यसमाज नियम २।।

२६. स्वमन्तव्या. १, आर्योद्देश्य. १ आदि।

२७. भ्वादिगण।

२८. (१) य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।

यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

यजु. २५/१३।।

(२) परि विश्वा भुवनान्यमृतस्य तन्तुं विततं दृशे कम्।

यत्र देवा अमृतमानशानाः समाने योनावध्यैरयन्त।। आदि

अथर्व २/१/५

२९. (१) आर्याभिविनय, पृ. ७।। आदि।

(२) सत्या. तृ. पृ. ३८।। आदि।

३०. (१) न तस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः।

नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुषक्।।

ऋ. १/५२/१४।।

(२) न यस्य देवा देवता न मर्ता आपश्चन शवसो अन्तमापुः।

स प्ररिक्वा त्वक्षसा क्ष्मो दिवश्च मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती।।

ऋ. १/१००/१५।।

(३) अनन्तं विततं पुरुत्रानन्तमन्तवच्चा समन्ते।

ते नाकपालश्चरति विचिन्वन्विद्वान्भूतमुत भव्यमस्य।।

अथर्व. १०/८/१२।।